युद्ध नहीं, शांति चाहिए

यह लेख इराक पर अमेरिकी हमले के दौरान लिखा गया और जनसत्ता में छपा

प्रफुल्ल कोलख्यान

एक बार फिर दुनिया पर प्रत्यक्ष युद्ध थोपा गया है। अमेरीका और उसके दबाव को झेल नहीं पानेवाले देशों के द्वारा इराक पर थोपे गये युद्ध के वैश्विक विरोध की माँग का मूल आशय है – `युद्ध नहीं, शांति चाहिए'। इस मूल आशय को समझना होगा। यह माँग सिर्फ निषेधात्मक नहीं है, सकारात्मक भी है। युद्ध नहीं चाहिए और शांति अवश्य चाहिए। युद्ध के नहीं होने से क्या शांति सुनिश्चित होती है? ऐसा नहीं है। युद्ध नहीं होने की स्थिति, समाज में शांति की अनिवार्य स्थिति नहीं हुआ करती है। एक विषम व्यवस्था में अघोषित युद्ध के अंतर्घात से आहत समाज मारक क्षयशीलता से जूझता रहता है। भाषिक विकास को भी सामाजिक विकास का साक्ष्य माना जाता है। भाषिक विकास को ध्यान में रखें तो `जूझ' या `जूझना' `युद्ध' या `युद्ध करना' का ही देशज रूप है। जीवन में बहुत कुछ चाहिए होता है। इस बहुत कुछ का अंतिम उद्देश्य शांति है। जीवन के सारे संघर्षों का उद्देश्य शांति है। चाहे जैसे हो, जीवन में शांति चाहिए। बिना शंति के जीवन दुर्वह बोझ बनकर रह जाता है। पूरी पृथ्वी वर्चस्ववादियों के दुराचरण से सदैव आक्रांत रही है। जब कोई साधन नहीं था, तब वर्चस्व की आकांक्षा रखनेवाले लोग खाली हाथ लड़ते थे। जैसे-जैसे साधन होते गये युद्ध के हथियार भी बढ़ते गये। हथियार विकसित करने और उससे अपने को शक्ति संपन्न बनाने की लालसा के पीछे आत्मरक्षा के तर्क को अर्दली की तरह खड़ा करना वर्चस्ववादियों की आदत रही है। इनकी बद्धमूल मान्यता है – `आत्मरक्षा का सर्वोत्तम उपाय आक्रमण है'। स्वभावत: आत्मरक्षा का यह तर्क फैलकर आक्रमण का तर्क बन जाता है। दुनिया के लगभग सभी देशों के बजट प्रावधान इस बात के गवाह हैं कि सब से अधिक बोझ `आत्मरक्षा' नाम की परियोजना पर ही हुआ करता है।

मनुष्य का इतिहास युद्ध जर्जर है। युद्ध के मूल में वर्चस्व का छल होता है। यह छल युद्ध के मैदान में फैलकर सामाजिकता की आधार भित्ति, अर्थात नैतिकता की किसी भी अवधारणा को दीमक

की तरह चाट जाता है। सत्य अविभाज्य होता है। सत्य होता है, या फिर नहीं होता है। जिसे खंडित सत्य कहा जाता है, वह वास्तव में असत्य ही होता है। धर्मराज ने महाभारत में `नरो वा कुंजरो' की घोषणा की थी। `नरो वा कुंजरो' में अर्द्ध-सत्य नहीं, अर्द्ध-असत्य था। असत्य हमेशा खंडित होता है। युद्ध की नैतिकता अर्द्ध-असत्य से पूर्ण-असत्य की ओर तेजी से बढ़ती है। युद्ध अपने छलों के मानकीकरण से हासिल जबरिया वैधता के फंदे में फाँसकर मनुष्यता को तहस-नहस कर देता है। नैतिकता का जन्म तार्किकता से होता है। युद्ध तार्किकता को खंडित करने का सबसे क्रूर औजार होता है। युद्ध में नैतिकता की हालत माता-पिता की तलाकी प्रक्रिया के बीच एकल परिवार के बच्चों-सी होती है। बच्चों के हित की दुहाई तो बार-बार दी जाती है लेकिन कोई पक्ष अपने अहं को एक क्षण के लिए भी स्थगित करने को तैयार नहीं होता है। युद्ध के मैदान से नैतिकता की पुकार बार-बार सुनाई तो देती है लेकिन उस पुकार की प्रतिध्वनि पुकारनेवालों के अंत:करण तक लौटकर नहीं आती है। जिस पुकार की प्रतिध्वनि लौटकर अपने स्रोत तक नहीं पहुँच पाये वह पुकार प्रपंच से अधिक और कुछ हो ही नहीं सकती है। हार युद्ध का सत्य है। जीत युद्ध का भ्रम है। जीत का भ्रम बहुत दिन तक टिक नहीं पाता है। कलिंग युद्ध में अशोक की जीत हुई थी। लेकिन कलिंग युद्ध को याद इसलिए किया जाता है कि उस युद्ध के बाद अशोक जीत के भ्रम को भी जीत पाने में सफल हुआ था।

दुनिया में जनतंत्र - वह जैसा भी है - की प्रतिष्ठा के बाद इस विश्वास को आधार मिला कि अब युद्ध को मनुष्य अपने पास फटकने नहीं देगा। क्योंकि, संवाद के लिए सबसे अधिक जगह जनतंत्र में होती है। बल्कि संवाद ही जनतंत्र का प्राण होता है। संवाद युद्ध और किसी भी अमानवीय कृत्य के संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण प्रतिरोधक होता है। यह इतिहास और मनुष्य के विकास की बहुत बड़ी बिडंबना ही है कि अपने देश को जनतंत्र का जगत गुरू बतानेवाले शासक ही मनुष्यता पर बार-बार युद्ध थोपते रहे हैं। असल में शक्तियों के विभिन्न स्तर पर विकेंद्रीकरण और इन विभिन्न स्तरों के तंतुबद्धीकरण से ही जनतंत्र की अंतर्वस्तु प्रभावी बनती है। साम्राज्यवाद की अंतर्वस्तु शक्तियों को विकेंद्रित करनेवाले विभिन्न स्तरों को ध्वस्त करते हुए शक्तियों के अतिकेंद्रण से ही अपना प्राणरस पाती है। साम्राज्यवाद अपने अधीनस्थ समाजों और सामाजिकों के सार को सोखकर उसे सत्वहीन बनाता है। यह बात समझ में आनी चाहिए कि जिस प्रकार किसी भी व्यवस्था में आंतरिक जनतंत्र के प्रति वास्तविक सम्मान का अभाव उस व्यवस्था को तरह-तरह के विचलनों को शिकार बना देता है, उसी प्रकार बाह्य जनतंत्र के प्रति वास्तविक सम्मान का अभाव भी उस व्यवस्था के बाहर पड़नेवाली व्यवस्थाओं को तरह-तरह के विचलनों को शिकार

बना देता है। ऐसी कोई व्यवस्था वैध ही नहीं हो सकती है जो अंदर से जनतांत्रिक हो और बाहर से साम्राज्यवादी हो। इतिहास गवाह है कि अपने को जनतंत्र का जगत गुरू बतानेवाले देश हमेशा से इस अवैध स्थिति के शिकार रहे हैं।

भूमंडलीकरण सम्राज्यवाद का नया औजार है। सत्ता और शक्ति के हर रूप, प्रकार और स्रोत का अतिकेंद्रीकरण भूमंडलीकरण की मूल मंशा है। इराक पर थोपे गये इस युद्ध को अमेरीका की तेल पिपासा से भी जोड़कर देखा जा सकता है। किंतु, इस युद्ध को अमेरीका की तेल पिपासा से ही सीमित मान लेना तात्कालिकता के गहरे दबाव में आकर सरलीकरण का शिकार बना दे सकता है। असल बात तो यह है कि यह युद्ध उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की साम्राज्यवादी प्रक्रिया की ही अनिवार्य फलश्रुति है। उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में राष्ट्रीय संप्रभुता का सवाल कई सर्वाधिक गंभीर सवालों में से एक है। उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को तीव्रतर बनाने में साम्राज्यवादी शक्तियों की इतनी अधिक दिलचस्पी का रहस्य क्या है? कहना होगा कि इस प्रक्रिया में साम्राज्यवादी शक्तियाँ मूल रूप से अपनी राष्ट्रीयता के अलावे किसी और की राष्ट्रीयता के होने का निषेध करती है। अपनी इसी अंधराष्ट्रवादी रुझान के कारण पूरी दुनिया को अपना चारागाह मानकर चलती है। इसलिए इराक पर हुए इस बर्बर आक्रमण के वैश्विक आयाम को समझे बिना काम नहीं चल सकता है। यह आशंका भी निराधार नहीं है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की वैधता को गहरी चुनौती देता हुआ इराक पर थोपा गया यह युद्ध नई विश्व-व्यवस्था में दुनिया में अब तक के हुए युद्ध से अपने मूल चरित्र में सर्वथा नये प्रकार का युद्ध है। इस सर्वथा नये प्रकार के युद्ध की पहली कड़ी इराक है, मगर आखिरी नहीं। उन्हें किसी भी राष्ट्रीयता के अंत:पुर में प्रवेश कर उसके ऐतिहासिक और निजगत वैशिष्ट्य को तहस-नहस करने का बहाना चाहिए। वे चतुर हैं, बहाना वे खुद बना लेंगे। भूलना नहीं चाहिए कि उनकी नजर में और बहुत कुछ के साथ-साथ कश्मीर भी है। वे किसी भी वास्तविक और जीवंत सभ्यता और राष्ट्रीयता के स्वाभाविक आत्म को खंडित कर निर्णय के आत्माधिकार का मामला उठाते हुए अपना निर्णय थोपेंगे। उनके लिए राष्ट्रीयताएँ सिर्फ अवधारणात्मक निर्मितियाँ हैं, संघटनात्मक वास्तविकताएँ नहीं। अद्भुत यह कि जिस विमान से जीवन को नष्ट करनेवाले बम बरसाये जाते हैं उसी विमान से जीवन को बचानेवाली दवा ओर भोजन सामग्री भी लुटाई जाती हैं! वे पूरी दुनिया को यकीन दिलाना चाहते हैं कि युद्ध के ध्वंसावशेष को सोना में बदलनेवाली विकास की योजनाएँ भी उन्होंने बना रखी है। ध्वंस भी वही करेंगे, निर्माण भी वही करेंगे। जो होगा उनकी ही मर्जी से होगा। उदारीकरण, निजीकरण और

भूमंडलीकरण का तिरगुन फाँस लिए डोलनेवाली साम्राज्यवादी शक्तियाँ जब अन्य राष्ट्रीयताओं को ही माया बताती है तो राष्ट्रीय संप्रभुताओं को मानने का सवाल ही कहाँ पैदा होता है! असल में ये उन लोगों में नहीं हैं जो नहीं जानते थे कि वे क्या कर रहे थे, ये खूब जानते हैं कि ये क्या कर रहे हैं।

ऐसी स्थिति में स्वाभाविक ही है कि किस देश में कौन सत्ता सम्हालता है, इसे उस देश का आंतरिक मामला मानना उनके लिए संभव ही नहीं हो सकता है। पहले की स्थिति यह थी कि यदि किसी देश की नीति से उसके पड़ोसी देश की शांति या विश्व-शांति को खतरा होने की आशंका उत्पन्न होती है तो उस पर विचार और आवश्यक कार्रवाई के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी विश्व-संस्था थी। संयुक्त राष्ट्र संघ तो राष्ट्रों का संघ है। जब दूसरे राष्ट्र के भी अस्तित्ववान होने की अवधारणा ही नकारी जा रही है तब उनके संघ के होने को ही कैसे वे मान सकते हैं! अपनी नीतियों को दूसरी राष्ट्रीयताओं पर थोपने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की ओट की जरूरत कल तक थी। आज इस ओट की कोई जरूरत नहीं रह गई है। संयुक्त राष्ट्र संघ की जरूरत इराक की खुफिया तलाशी लेने तक थी। इस खुफिया तलाशी से प्राप्त जानकारियों का इस्तेमाल इराक के विरुद्ध किये जाने में संयुक्त राष्ट्र संघ की कोई जरूरत नहीं है। संयुक्त राष्ट्र संघ का सहारा लेकर इराक को निरस्त्र करने की लंबी प्रक्रिया चलाई गई और अब संयुक्त राष्ट्र संघ की पूर्ण अवहेलना कर उस पर शस्त्र हमला किया जा रहा है। महाभारत के भीष्म पितामह की तरह अमेरीका के पक्ष में नकली निष्ठाओं से प्रतिबद्ध संयुक्त राष्ट्र संघ शरशैय्या पर पड़े-पड़े कराहते रहने के अलावा कर भी क्या सकता है? इस हमले को इराक की मुक्ति से जोड़ना पूरे मामले को अद्भुत बना देता है। ध्यान में रखना ही होगा कि जिस प्रकार इराक की मुक्ति के लिए उस पर हमला किया जा रहा है उसी प्रकार पूरी दुनिया के गरीब लोगों की समृद्धि के लिए ही उनके शोषण की पटभूमि भी तैयार की जा रही है। यह दुनिया हिटलर के अंधराष्ट्रवादी रुझान से ऊपजी तानाशाही का नतीजा देख चुकी है। यह नतीजा तब उतना खतरनाक था जब हिटलर के पास आज के तानाशाहों जैसे विध्वंसक हथियार नहीं थे। इराक के पास जो हथियार हैं उन से विश्व शांति को खतरा है और अमेरीका के पास जो हथियार हैं वे विश्व शांति के लिए परम अनिवार्य हैं ; इन बातों को कौन मतिमंद मान सकता है ! वैश्विक संदर्भ में अमेरीका का रवैया हमेशा तानाशाह की तरह होता है। राष्ट्रीय संप्रभुताओं और विपुल विश्व-जनमत की अवहेलना करते हुए किसी देश के खिलाफ सैन्य कार्रवाई तानाशाही नहीं है, तो तानाशाही और क्या हो सकती है? अमेरीका की यह तानाशाही अपनी स्वाभाविक परिणति के अनुरूप अपने घरेलू व्यवहार में भी बहुत जल्दी ही

स्पष्ट हो जायेगी। सचेत अमेरीकी नागरिक इस स्थिति को समझ रहे हैं। इराक युद्ध के संदर्भ में वहाँ उभर रहे व्यापक जन आक्रोश से भी उनकी इस समझ की विश्वसनीय पुष्टि होती है।

इस इराक युद्ध के परिप्रेक्ष्य में उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में सकारात्मक तत्त्वों की तलाश करनेवाले लोगों को राष्ट्र राज्य की भूमिका पर गंभीरता से पुनर्विचार करना चाहिए। खासकर, विश्व पर्यावरण की गंभीर चिंता करनेवाले उन लोगों को जो उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण से उत्पन्न रोजगारहीन वृद्धि की चपेट से गरीबों के जीवनयापन की संभावनाओं को बचाने के लिए वैकल्पिक विकास की अवधारणा के साथ चिरंतन आजीविका के लिए राष्ट्र-राज्यहीन सामाजिकताओं के लिए विशेष आग्रहशील हैं। समानता और सामाजिक न्याय के सुनिश्चित हुए बिना शांति की कोई संभावना नहीं बनती है। यह सच है कि समानता और सामाजिक न्याय का सापेक्ष सामाजिक समूहन के अंदर से ही तय होता है। उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की प्रक्रिया विषमताओं को बढ़ाती है। इन विषमताओं के समाज-मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभाव से बचने और जीवन में शांति की बहाली में राष्ट्र-राज्यहीन सामुदायिक जीवन की संभावनाओं को तलाशना एक स्वप्नशील प्रयास ही है। इस स्वप्न का जीवन-यथार्थ की कठिन भूमि पर उतरना संभव नहीं दिखता है। इसलिए शांति की मानवीय कामना के अंतर्गत इराक युद्ध के विरुद्ध संगठित हो रहे आक्रोश का स्वाभाविक लक्ष्य उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की वर्तमान पद्धति और प्रक्रिया भी होनी चाहिए। युद्ध चाहे प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष हो उसका विरोध उनको पैदा करनेवाली परिस्थितियों के विरोध के बिना पूरा ही नहीं हो सकता है।